IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

प्राचीन भारत में विदुषी महिलाऐं : एक वैज्ञानिक समाजशास्त्रीय अध्ययन

नीरज गंगवार

शोध छात्रा
प्राचीन इतिहास एवं संस्कृतिक विभाग
एम0जे0पी0आर0 विश्वविद्यालय, बरेली

सारांश

परिवर्तन प्राकृति का नियम है। विभिन्न ऐतिहासिक तथ्यों से ज्ञात होता है कि सभ्यता के विकास से लेकर भारतीय समाज कई परिवर्तनों से गुजरता हुआ आज के वैज्ञानिक युग तक पहुँचा है। यह मनुष्य की जिज्ञासु प्रवृत्ति या वैज्ञानिक सोच ही थी जिसके कारण वह एक सभ्य मानव बना और साथ ही समाज का निर्माण कर सका। स्त्री व पुरूष किसी भी समाज के दो मूल स्तम्भ रहे हैं और समाज का जो विकसित स्वरूप आज हमें दिखाई पड़ता है वह इन दोनों के ही संयुक्त प्रयासों का परिणाम है। लेकिन जब समाज में किसी भी नवीन अविष्कार या व्यवस्था के लिए श्रेय देने का प्रश्न आता है तो अधिकांशतः श्रेय पुरूष को ही दिया जाता है। चूँकि भारतीय समाज प्रारम्भ से ही पुरूष प्रधान समाज रहा है अतः स्त्रियों द्वारा किये गये कार्यों को कभी अधिक महत्व नहीं दिया गया। वैदिक साहित्य में 'अपाला', 'घोषा', लोपा', 'मुद्रा' आदि कुछ महिलाओं का उल्लेख अवश्य मिलता है किन्तु इनका उल्लेख केवल शिक्षित व शास्त्रों की ज्ञाता महिला के ही रूप में किया गया है। जबकि वास्तव में देखा जाय तो प्राचीन काल से ही महिलाएँ पुरूषों के साथ प्रत्येक कार्य में कन्धे से कन्धा मिलाकर चलती रही हैं फिर चाहे वह युद्ध का क्षेत्र हो या कृषि कार्य। उन्होंने प्रत्येक कार्य में अपनी कार्य में बुद्धमता का प्रमाण दिया है। प्रस्तुत शोध पत्र में प्राचीन भारतीय महिलाओं की इसी वैज्ञानिक सोच को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

वर्तमान आधुनिक युग में स्त्री पुरूष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रही है फिर चाहे वो कोई भी क्षेत्र क्यों न हो। वह जितनी कशुलता से अपने घर–परिवार को सम्भाल रही हैं उतनी ही निपूर्णता से घर के बाहर के कार्यों को भी पूर्ण रूप से कर रही हैं। आधुनिकयुग की बदलती परिस्थितियों के कारण आज समाज में स्त्री की भूमिका में भी अनेक परिवर्तन आ रहे हैं और यहाँ सबसे विचारणीय बात यह है कि महिलाएँ अपनी इस बदली हुई भूमिका का निर्वहन भी बड़ी कुशलतापूर्वक कर रही हैं। महिलाओं द्वारा अपनी भूमिका का निर्वहन करने में सर्वाधिक योगदान आधुनिक विज्ञान व तकनीक का रहा है। चूँकि आधुनिक विज्ञान व तकनीकी के कारण ही उन्हें अनेक ऐसे उपकरण (मिक्सी, गैस चूल्हा, माइक्रोवेव, ओवन, वॉशिंगमशीन, रेफ्रीजिरेटर) आदि प्राप्त हुए, जिन्होंने घरेलू कार्यों को अत्यधिक आसान बना दिया फलतः पहले जिन कार्यों को सम्पन्न करने में महिलाएं अपना पूरा दिन व्यतीत कर देती थीं अब वे कार्य मिनटों व घंटों में पूर्ण होने लगे हैं। अब महिलाएँ बचे हुए समय का सदुपयोग कई अन्य लाभकारी कार्यों को पूर्ण करने में कर रही हैं तथा मानसिक व आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनकर अपने परिवार को भी आर्थिक मजबूती प्रदान कर रही हैं।

विज्ञान व तकनीकी के कारण ही महिलाएं घर व नौकरी दोनों में कुशलतापूर्वक तालमेल स्थापित कर पा रही हैं। वे घर तो सम्भाल ही पा रही है साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सेवाएं देकर नित नई ऊचाँइयों को छू रही हैं। आज ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहाँ महिलाएं कार्य न कर रही हों, वे खेल–कूद, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, औद्योगिक, विज्ञान, तकनीकी, शिक्षा, स्वास्थ आदि सभी क्षेत्रों में बढ़–चढ़कर अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं तथा समाज में अपने लिए सम्मानित स्थान प्राप्त कर रही हैं। यदि प्राचीन भारतीय महिलाओं की सामाजिक स्थिति पर विचार करें तो हम पाते हैं कि उस युग में भी महिलाएं घर व बाहर दोनों क्षेत्रों में पुरूषों के साथ–साथ कार्य करती थीं किन्तु पुरूष प्रधान समाज होने के कारण उनके कार्यों को अधिक महत्व नहीं दिया गया। समाज में उनकी स्थिति सदा दोयम दर्जे की ही बनी रही। क्या इसका तात्पर्य यह है कि प्राचीन भारतीय महिलाएं जो कार्य करती थीं। उसमें उनकी अपनी व्यक्तिगत सोच नहीं होती थी वरन् वे केवल पुरूषों की सोच ही अनुसरण करती थीं? क्या उनकी सोच में कोई रचनात्मक नहीं होती थी?[1]

अध्ययन का उद्देश्य– प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य प्राचीन भारतीय विदुषी महिलओं की बौद्धिक स्थिति तथा उनकी रचनात्मकता का समाजशास्त्रीय अध्ययन करना है। विभिन्न ऐतिहासिक अध्ययनों के आधार पर यह ज्ञात करने का प्रयास किया जायेगा कि क्या वे अपनी विभिन्न भूमिकाओं के निर्वहन में वैज्ञानिकता का प्रयोग करती थी?

अध्ययन पद्धति– प्रस्तुत शोध–पत्र में विश्लेषणात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है तथा तथ्यों को प्रमाणित करने के लिए प्राथमिक व द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों की सहायता ली गई है। साथ ही कुछ बुजुर्ग महिलाओं के व्यक्तिगत अनुभवों को भी यहाँ, वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के रूप में शामिल किया गया है।

साहित्यिक अवलोकन– प्रायः सभ्यता के विकास के साथ–साथ हमारी सामाजिक व्यवस्था इस प्रकार से बनती चली गई कि जिसमें पुरूष परिवार के लिए आजीविका के साधन जुटायेगा तथा महिला उन्हें साधनों के द्वारा पारिवारिक व्यवस्था को बनाये रखेगी। यद्यपि एस युग में भी महिलाएं पुरूषों के अधिकांश कार्यों में हाथ बँटाती थीं। इस सन्दर्भ में **'भगवती प्रसाद पांथरी'** लिखते हैं कि ''मौर्य युग के समाज में स्त्रियों को प्रतिष्ठित स्थान था। वे ऊँची शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं और आवश्यकता पड़ने पर पुरूषों की तरह शासन और युद्धों में भी भाग ले सकती थीं। इस युग की स्त्रियाँ शिक्षा में जहाँ योग्य थी वहीं संकट के समय राजघराने की स्त्रियाँ आवश्यकता पड़ने पर शासन–सूत्र भी अपने हाथों में ले लेती थीं इतना ही नहीं आवश्यकता पड़ने पर वह पुरूषों के साथ रणभूमि में शस्त्र उठाने में भी पीछे नहीं रहती थीं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में स्त्री परिचारिकाओं, भिक्षुकी और स्त्री गुप्तचरों का भी वर्णन है। ''जबकि श्री त्रिनेत्र पाण्डे राजपत काल की स्त्रियों की स्थिति व दशा का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि ''राजकुल की स्त्रियाँ राजनीति तथा शासन में भाग लिया करती थी। अनेक स्त्रियों ने राजकुमारों की अल्पावस्था में संरक्षिका का कार्य किया था और शासन भार को सम्भाला था। बहुत सी स्त्रियों ने प्रान्तीय शासकों तथा गांव की मुखिया के रूप में भी शासन किया था।''

विभिन्न ऐतिहासिक व समसामयिक साहित्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय महिलाएं प्रत्येक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज कराती थीं परन्तु कोई भी साहित्य उनके द्वारा किये गये कार्यों से उनकी सामाजिक स्थिति में सुधार का उल्लेख नहीं करता। विभिन्न साहित्य प्राचीन भारतीय महिलाओं की सामाजिक स्थिति का तो उल्लेख करते हैं। किन्तु तात्कालिक सामाजिक विकास में उनके द्वारा दिये गये योगदान का ना तो कहीं उल्लेख मिलता है और न ही कहीं उनको, उनके कार्यों की सफलता का श्रय देने का प्रयास किया गया है।[2]

प्राचीन साहित्यिक उल्लेखों से ज्ञात होता है कि समाज में स्त्रियों की दशा काफी अच्छी थी, उन्हें पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त थी। **ऋग्वेद में घोषा, 'लोपा', 'मुद्रा', 'विश्ववारा'[3]** आदि स्त्रियों के नाम आते हैं जो पर्याप्त शिक्षिता थी, जिन्होंने कुछ मंत्रों की रचना भी की थी। यद्यपि तात्कालिक समाज में केवल उच्च वर्ग व राजघरानों की बालिकाओं के लिए ही शिक्षा की व्यवस्था होती थी तथा सामान्य वर्ग की बालिकाएं अधिकांशतः अशिक्षित ही रह जाती थी इसलिए उस युग में बुहत कम ही विदुषी महिलाओं का उल्लेख हमें मिलता है। लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उस युग की महिलाएं की बौद्धिक स्थिति निम्न थी। यह सत्य है कि उस युग की अधिकांश महिलाएं अशिक्षित होती थी किन्तु उनके द्वारा किये जाने वाले प्रत्येक कार्य से उनकी उच्च बौद्धिकता का अनुमान लगाया जा सकता है। अन्य शब्दों में कहें तो प्राचीन भारतीय महिलाएं हर क्षेत्र में पुरूषों के समान ही सोच रखती थी और न केवल सामान्य सोच रखती थी वरन उनके द्वारा कुशलतापूर्वक किये गये कार्यों से उनकी वैज्ञानिक सोच का भी प्रमाण मिलता है। पूर्व में दिये गये कुछ साहित्यिक उल्लेख प्राचीन भारतीय महिलाओं द्वारा प्रशासनिक कार्य, युद्ध तथा शिक्षा क्षेत्र में उनकी भागीदारी को प्रमाणित करते हैं। साथ ही प्रस्तुत उल्लेखों से भी ज्ञात होता है कि उक्त सभी क्षेत्रों में मुख्यतः उच्च वर्ग व राजघरानों की महिलाओं को ही पुरूषों के समान अवसर प्राप्त थे। वहीं दूसरी ओर यदि हम

सामान्य वर्ग की महिलाओं की भागीदारी की बात करें तो प्रायः अधिकांश तात्कालिक व उत्तरवर्ती साहित्यों में हमें महिलाओं की किसी विशेष भागीदारी या उपलब्धि का उल्लेख नहीं मिलता। हाँ, इतना अवश्य है कि प्रत्येक साहित्य में उनकी सामाजिक स्थिति का उल्लेख अवश्य मिल जाता है जिनमें अधिकांशतः उनके द्वारा निर्वहन की गई विभिन्न घरेलू भूमिकाओं तथा कर्त्तव्यों के ही प्रमाण मिलते हैं। किन्तु यदि वास्तव, में देखा जाय तो इन्हीं कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए ही वह विभिन्न क्षेत्रों यथा– कृषि, पशुपालन, गृहकार्य, संस्कृति तथा कला आदि में पुरूषों को अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करती थी। यह बात अलग है कि पुरूष प्रधान समाज होने के कारण पुरूष द्वारा किये गये कार्यों को उपलब्धि का नाम दिया जाता था तथा महिलाओं द्वारा उन्हीं कार्यों को करने पर दायित्व का नाम दे दिया जाता था।[4]

आज यदि महिलाएं घर से बाहर निकलकर समाज में अपना नाम रोशन कर रही हैं तो हम इसका श्रेय विज्ञान व तकनीक को देते हैं जिनके कारण घरेलू कार्यों को आसान करने वाले विभिन्न उपकरण (मिक्सी, वांशिंग मशीन, ओवन आदि) बनाये जा सके। किन्तु वास्तव में देखा जाय तो इसका श्रेय प्राचीनकाल की महिलाओं को मिलना चाहिए था क्योंकि जिन उपकरणों का उपयोग हम आज कर रहे हैं। उनकी आधारशिला तो प्राचीन युग की महिलाओं ने अशिक्षित होते हुए भी अपने घारेलू कार्यों को आसान करने के लिए अपने आस–पास की सामान्य वस्तुओं से ही तैयार किया। जैसे– मसालों को बारीक पीसने के लिए पत्थर के सिलबट्टे का प्रयोग करना, दही व दूध बिलोने के लिए हाथ मथनी का प्रयोग करना आदि। चूंकि उक्त सभी वस्तुओं (उपकरणों) के निर्माण के काल, निर्माता आदि का कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता, लेकिन फिर भी अनुमान लगाया जा सकता है कि इनके निर्माण में कहीं न कहीं किसी महिला की ही सोच रही होगी क्योंकि तब घरेलू कार्य महिलाएं ही करती थी तथा उन्हें किस प्रकार कम समय में पूर्ण करना है इसका अन्दाजा भी महिलाओं को ही अधिक रहा होगा। ये सभी उपाय तात्कालिक महिलाओं की बौद्धिक कुशलता व उनकी वैज्ञानिक सोच को प्रदर्शित करते हैं। हमने विभिन्न क्षेत्रों में उनकी वैज्ञानिक सोच का वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों के अर्न्तगत करने का प्रयास किया है[5]–

कृषि एवं पशुपालन क्षेत्र में[6]– भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा सभ्यता के विकास से ही कृषि आजीविका का मूल साधन रहा है। सामान्यतः प्रारम्भ से ही पुरूषों को ही कृषि कार्य के साथ जोड़कर देखा जाता रहा है लेकिन महिलाएं भी कृषि कार्यों में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करती थी। प्रायः खेतों में जुताई व बुवाई का कार्य पुरूष करते थे। जब फसल उग जाती थी तो खेतों मं`निराई व गुड़ाई का कार्य महिलाओं द्वारा किया जाता था। यह बारीक कार्य होता है जिसकी एक विशेष तकनीक होती है जिसमें फसल को बिना नुकसान पहुँचाये, फसल के बीच से घास व अन्य कूड़े को साफ किया जाता है। चूँकि महिलाएं इस तकनीक में पुरूषों से अधिक पिनूर्ण होती थी अतः यह कार्य महिलाओं द्वारा ही कराया जाता था। इसके अतिरिक्त फसल तैयार होने पर उसे काटने व मांडने में भी महिलाएं अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करती थी। कृषि तकनीक के साथ–साथ महिलाएं अनाज के भंडारण में प्रयुक्त होने वाले पात्र, कीटनाशक आदि से भी भली–भांति परिचित थी। अधिकांशतः उनके द्वारा अनाज में प्रयुक्त होने वाले कीटनाशक का निर्माण घर पर ही किया जाता था। अलग–अलग प्रकार के अनाजों के लिए अलग–अलग प्रकार के कीटनाशकों का प्रयोग होता था। इसके अतिरिक्त मोटे अनाज, दलहन व तिलहन के भण्डारण का स्थान भी अलग–अलग होता था। एक ओर जहां मोटे अनाज के लिए भूमि से थोड़ा उठाकर स्थान बनाया जाता था तो वहीं दलहन के लिए भण्डारण कक्ष के सबसे शीतल स्थान को चुना जाता था। मोटे अनाजों के लिए प्रायः सूखी व बिना पिसी हुई हल्दी व लाल मिर्च का प्रयोग किया जाता था तो दालों को सुरक्षित रखने के लिए सरसों के तेल का हाथ लगाकर रखा जाता था। अनाजों के भण्डारण की यह तकनीक कितनी कारगर व उत्तम रही होगी इसका अनुमान इस बात से लग जाता है कि आज भी कई ग्रामीण क्षेत्रों में अनाजों के भण्डारण में इन्हीं तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।

कृषि के साथ ही साथ पशुपालन भी आजीविका का एक साधन था। अधिकांशतः कृषक कृषि के साथ–साथ पशुपालन भी करते थे। पशुपालन में मुख्यतः गाय तथा भेड़ आदि दृग्ध उत्पादक पशुओं का ही पालन किया जाता था। पशुपालन में भी पशुओं की देख–रेख समस्त कार्य भार महिलाओं पर ही था। महिलाओं द्वारा पशुओं की देख–रेख परिवार के सदस्यों के समान की जाती थी। वे पशुओं के खान–पान का पूर्ण ध्यान रखती थी। उनके लिए चारा लाना, दाना देना आदि सभी कार्य महिलाएं ही करती थीं। गौशाला की सफई आदि का कार्य भी वे ही देखती थीं।[7]

घरेलू क्षेत्र में– आई0 बी0 हार्नर[8] पत्नी के कर्त्तव्यों के सन्दर्भ में लिखते हैं कि ''पति के सभी प्रिय सम्बन्धियों की देख–रेख करना तथा गृह–कार्यों को ठीक प्रकार से सम्पन्न करना, अपने पति के कोष, स्वर्ण, चाँदी की देखभाल करना था।'' भारतीय सामाजिक व्यवस्था में परिवार तथा पारिवारिक कार्य प्राचीन भारतीय महिला के जीवन की धुरी थे। उसका सम्पूर्ण जीवन पारिवारिक कर्त्तव्यों के ही चारों ओर घूमता हुआ व्यतीत हो जाता था। यही कारण है कि प्राचीन भारतीय महिला की वैज्ञानिक सोच के सार्वाधिक प्रमाण हमें उसकी गृह कार्य शैली में ही देखने को मिलते हैं और उसमें भी अगर हम देखें तो किसी भी महिला का सर्वाधिक समय रसोई में ही व्यतीत होता था। चूँकि प्राचीन भारतीय लोगों का जीवन अत्यधिक साधारण होता था अतः उनकी आवश्यकताएं भी कम होती थीं, उनकी मूलभूत आवश्यकताएं रोटी, कपड़ा व मकान तक ही सीमित थी, और इनमें भी सर्वाधिक महत्व रोटी अथवा भोजन को दिया जाता था। यही कारण है कि तात्कालिक पुरूष वर्ग का मुख्य लक्ष्य परिवार के लिए भरण–पोषण के साधन जुटाना था तथा महिलाएं उन्हीं प्राप्त साधनों का सर्वोत्तम उपयोग करने का प्रयास करती थी अर्थात् वे कम से कम साधनों में अधिक से अधिक लोगों का भरण पोषण करने का प्रयास करती थी और इन्हीं प्रयासों को सफल बनाने की प्रवृत्ति ने उनमें वैज्ञानिक सोच को विकसित किया। इसी वैज्ञानिक सोच के चलते तात्कालिक महिलाओं ने आधुनिक रासायनिक खाद्य संरक्षक तत्वों (प्रिजरवेटिव) के न होते हुए भी खाद्य पदार्थों को संरक्षित करने की कई विधियां खोज ली थी। उस युग में प्रयुक्त होने वाले संरक्षक तत्वों में मुख्यतः नमक, गुड़, सरसों का तेल तथा हल्दी आदि प्रमुख थे। इसके अतिरिक्त मौसमी फल व सब्जियों की अधिकता होने पर वे उन्हें काटकर सुखा लिया करती थी तथा जिस मौसम में सब्जियाँ कम होती तब इन्हीं सुखाई गई सब्जियों का प्रयोग किया जाता था। भिन्न–भिन्न सब्जी व दालों को बनाने की विधियों में भी भिन्नता होती थी तथा किस सब्जी व दाल के साथ कौन से मसाले लाभकर होंगे और कौन से हानिकारक इस बात की भी उन्हें पूर्ण जानकारी होती थी और उनकी ये तकनीक कितनी कारगर थी इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उनकी उस समय की सभी विधियां आज भी हमें अपने ग्रामीण क्षेत्रों में उपयोग होती हुई दिखायी देती हैं। आज भी हमारी ग्रामीण बुजुर्ग महिलाएं उन्हीं विधियों का प्रयोग करती हैं तथा अपने अनुभवों को आने वाली पीढ़ियों को भी बांटती हैं। मैंने भी इस प्रकार के कई व्यक्तिगत अनुभवों को सुना तथा परखा है। हमारी परिचित एक बुजुर्ग महिला ने ही मुझे बताया था कि सर्दियों के दिनों में सत्पादित होने वाली दालों को यदि कुछ रातों के लिए पाले में रखा जाय और दिन में धूप में सुखाकर कुछ दिनों तक इसी प्रकार की प्रक्रिया को दोहरा कर उन्हें सरसों का तेल लगाकर घर के सबसे ठंडे स्थान पर रखा जाय तो शीतकालीन दालों को लम्बे समय के लिए कीड़ों से संरक्षित रखा जा सकता है। इसी प्रकार की और भी कई अन्य कारगर विधियां हमें अपने ग्रामीण क्षेत्रों में देखने को मिल जाती हैं यथा– मक्का को छोटे–छोटे गट्ठरों में बांधकर उन्हें ऊँचाई पर लटकाना, लहसुन को भी इसी प्रकार गट्ठरों में बांधकर रखना, आलू व प्याज को फर्श पर फैलाकर रखना, कद्दुओं को लम्बे समय तक रखने के लिए उनके शाखा से लुड़े हुए स्थान पर गाय का गोबर लगाकर रखा जाता था तो भूमिगत सब्जियों (आलू, मूली, अरबी, अदरक आदि) को खेत में ही उच्च स्थान पर मिट्टी के नीचे दबाकर संरक्षित किया जाता था। आज भी उक्त विधियों का वस्तुओं के संरक्षण में उपयोग यथावत् हो रहा है।

रसोई के पश्चात् शेष बचे हुए समय का उपयोग महिला घर की साफ–सफाई व साज–सज्जा के लिए उपयोग करती थी। चूँकि उस समय मिट्टी के घर बनाये जाते थे तथा उनका फर्श भी मिट्टी का ही होता था। अतः घर की दीवारों व फर्श को चमकाने के लिए मिट्टी से लिपाई की जाती थी और यह कोई सामान्य नहीं वरन चिकनी, लाल मिट्टी होती थी तथा कीटनाशक के रूप में इसी मिट्टी में गाय के गोबर को मिलाकर पानी में गाढ़ा घोला जाता था। इसके अतिरिक्त घर के आंगन में कभी–कभी रंगोली भी बनायी जाती थी जिसके लिए महिलाएं हल्दी, आटे व गेरू आदि का प्रयोग रंगों के रूप में करती थीं। हल्दी व आटे का उपयोग कीटनाशक के रूप में भी किया जाता था। महिलाओं के कार्यों का उल्लेख करते हुए वनमाला लिखती हैं कि ''वैदिक काल में नृत्य, गीत आदि कलाओं के प्रति स्त्रियों की विशेष रूचि रही है तथा उत्तरा द्वारा कपड़ों की गुड़ियों को सजाना, सत्यवान द्वारा मिट्टी के अश्व बनाना, अश्व का चित्र खींचना आदि उल्लेखों से यह अनुमान किया जा सकता है कि गुड़िया और मिट्टी के खिलौने बनाना, चित्र खींचना, सिलाई, कढ़ाई–बुनाई आदि कलाएं स्त्रियां जनती थीं।''[9]

चिकित्सा क्षेत्र में– प्राचीन भारतीय महिलाएं चिकित्साशास्त्र की भी ज्ञाता थीं। वे अशिक्षित थीं, उन्होंने चिकित्सा विज्ञान की कोई विधिवत शिक्षा नहीं ली थी लेकिन फिर भी यदि कभी परिवार का कोई सदस्य अस्वस्थ होता था तो घर की स्त्रियों द्वारा ही घरेलू उपचार कर दिया जाता था। वैद्य से उपचार की आवश्यकता गम्भीर अस्वस्थता की स्थिति में ही पड़ती थी। घर की स्त्रियां सामान्य बीमारियों का उपचार साधारण घरेलू नुस्खों से ही कर देती थीं। भिन्न–भिन्न स्वास्थ्य समस्याओं के लिए विभिन्न प्रकार के काढ़े बनाती थीं। आज बाजार में विभिन्न रोगनाशक उत्पाद उपलब्ध हैं लेकिन प्राचीनकाल में कीट पतंगों से बचने के लिए महिलाएं गाय के गोबर के 'उपले' अथवा 'कण्डे' बनाकर रखती थीं। ग्रीष्मकाल व वर्षा ऋतु में जब मक्खी व मच्छर अत्यधिक हो जाते थे तो कण्ड़ों का उपयोग किया जाता था क्योंकि कण्ड़ों के धुएं से मच्छर भाग जाते हैं। इसके अतिरिक्त घर को अन्य प्रकार के कीट–पतंगों (चींटी, तिलचट्टा आदि) से बचाने के लिए भी

महिलाएं विभिन्न कीटनाशकों का निर्माण स्वयं घर पर ही कर लेती थीं, विशेषकर रसोई में प्रयुक्त खाद्य सामग्रियों से। वास्तव में देखा जाय तो प्राचीन युग की महिलाओं के लिए रसोई ही उनकी प्रयोगशाला थी, जहाँ से उन्हें सभी आवश्यक सामग्री प्राप्त हो जाती थी तथा इन्हीं पदार्थों को भिन्न–भिन्न विधियों से प्रयोग कर वे कभी औषधी, कभी कीटनाशक तो कभी खाद्य संरक्षण दवा (प्रिजरवेटिव) बनाती थीं। जैसे– हिन्दी को दूध के साथ पकाकर अथवा सरसों के तेल के साथ मिलाकर औषधी के रूप में प्रयोग किया जाता था जबकि बारीक पिसी हुई हल्दी को चींटी अथवा अन्य भूमिगत हुए कीट पतंगों के बिल में डालकर कीटनाशक के रूप में प्रयोग किया जाता था तो वही हल्दी की जड़ को सुखाकर दाल व अन्य मोटे अनाज में खाद्य संरक्षण दवा के रूप में प्रयोग किया जाता था। अतः हमें स्वीकार करना होगा कि प्राचीन भारतीय महिलाएं भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखती थीं।[10]

प्राचीन काल में आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं के समान चिकित्सा सुविधा नहीं थी विशेष रूप से महिलाओं के लिए। वर्तमान में तो स्त्री रोग सम्बन्धी कई अत्याधुनिक अस्पताल महिलओं के लिए खुल गये हैं, जिनमें स्त्री व पुरूष दोनों ही चिकित्सक का कार्य कर रहे हैं। लेकिन प्राचीन काल में महिलाओं के लिए इस प्रकार की कोई सुविधा नहीं थी। महिलाएं सामान्य बीमारियों के अतिरिक्त अपनी किसी भी स्वास्थ्य समस्या का जिक्र पुरूष चिकित्सक से नहीं करती थी। यही नहीं, किसी भी स्त्री के जीवन काल की सबसे महत्त्वपूर्ण अवस्था, गर्भावस्था में भी महिलाएं चिकित्सक के पास नहीं जाती थीं। इस सम्बन्ध में घर गाँव की बुजेर्ग व अनुभवी महिलाओं से ही सलाह ली जाती थी तथा प्रसव प्रक्रिया भी महिलाओं द्वारा ही सम्पन्न करायी जाती थी। सामान्यतः प्रत्येक क्षेत्र में कुछ महिलाएं प्रसव सम्पन्न कराने में निपूर्ण होती थीं इन्हें 'दाई' अथवा 'धाय' कह कर पुकारा जाता था। केवल अपने अनुभवों के आधार पर ही गर्भावस्था के समय होने वाली हर छोटी–बड़ी समस्या को बड़ी आसानी से हल कर देती थी। इस सन्दर्भ में मैं यहाँ अपना एक व्यक्तिगत अनुभव भी बाांटना चाहूँगी– ''विवाह के पश्चात जब मैं अपने सुसराल गई तो वहाँ मुझे एक ऐसी ही बुजुर्ग महिला से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ जिसका नाम 'बुलक्या' था।[11] उनके सम्बन्ध में घर के आस पास की महिलाएं अक्सर बातें किया करती थीं, वे बताती थीं कि अशिक्षित होते हुए भी उन्हें महिला सम्बन्धी समस्याओं का अत्याधिक ज्ञान था, विशेष रूप से गर्भावस्था सम्बन्धी। मैंने यह भी सुना है कि कई बार क्षेत्र के चिकित्सालयों में चिकित्सा की उच्च शिक्षा प्राप्त चिकित्सक भी उनसे सलाह लिया करते थे। वहीं एक परिचित ने अपने व्यक्तिगत अुनभव साझा करते हुए बताया था कि ''उनकी गर्भावस्था के अन्तिम पड़ाव में जब एक दिन मुझे कुछ तकलीफ महसूस होने लगी तो मैं अस्पताल गई जहाँ जाँच के बाद मुझे बताया गया कि गर्भ में बच्चे के गले में गर्भलान लिपट गई है तथा दो दिन के इन्तजार के बाद ऑपरेशन के द्वारा प्रसव कराया जायेगा, मैं घर आ गई। संयोगवश उसी दिन बुलक्या का भी आना हुआ और चूँकि स्थानीय लोगों का उन पर अत्यधिक विश्वास था। अतः परिवार के सदस्यों के कहने पर उनसे भी सलाह ली गई, उन्होंने ऊपरी जाँच की और वही बात दोहराई जो अस्पताल में कही गई थी और साथ ही उसने कहा कि ''इसके लिए ऑपरेशन की आवश्यकता नहीं है यदि आप लोग कहें तो मैं मालिश के द्वारा इसे ठीक कर सकती हूँ।''[12] हमने उनकी बात मान ली और उन्होंने सामान्य सरसों के तेल से कुछ देर मालिश करने के पश्चात कहा कि 'अब सब ठीक है' और दो दिन के बाद हम अस्पताल गये तो वहाँ पुनः जाँच की गई तो चिकित्सक भी यह देखकर हैरान थे कि बच्चे के गले से लिपटी हुई नाल अब निकल चुकी है और बच्चे को कोई परेशानी नहीं थी। कुछ दिनों बाद सामान्य प्रसव प्रक्रिया से मैंने एक स्वस्थ बालक को जन्म दिया।''

पर्यावरणीय क्षेत्र में– आज हम देखते हैं कि विभिन्न सरकारी व गैर सरकारी संगठनों द्वारा पर्यावरण को बचाने के लिए गीले व सूखे कूड़े के अलग–अलग निस्तारण के लिए अनेकों प्रयास किये जा रहे हैं। किन्तु ऐतिहासिक साहित्यों में प्रायः पर्यावरण प्रदूषण से सम्बन्धित उल्लेख नहीं के बराबर मिलते हैं। धर्मशास्त्रों में यदा–कदा ऋषि–मनीषियों द्वारा पर्यावरण के प्रति सतर्क रहने के उपदेश मिल जाते हैं। धर्मशास्त्रों में विभिन्न पेड़–पौधों की आराधना किये जाने का उल्लेख है यथा–पीपल, तलुसी, वट आदि। ये वृक्ष प्रायः किसी न किसी रूप में पर्यावरण संरक्षण का कार्य करते थे इसीलिए इन्हें आराध्य बताया गया। आज भी प्रायः प्रत्येक मंदिर में पीपल का वृक्ष व प्रत्येक घर में तुलसी का पौधा अवश्य दिखायी देता है तथा प्रतिदिन महिलाओं द्वारा इनकी आराधना भी की जाती रही है। धर्मशास्त्रों में इन वृक्षों के महत्त्व का तो उल्लेख मात्र है लेकिन इन वृक्षों का महत्व महिलाओं ने ही स्थापित किया है क्योंकि वृक्षों से सम्बन्धित अधिकांश धार्मिक रीति–रिवाजों का पालन महिलओं द्वारा ही किया जाता रहा है। अतः कहीं न कहीं महिलाएं भी पर्यावरण संरक्षण में अपना योगदान देती थी और यह पर्यावरणीय चेतना भारतीय महिलाओं में थी। उनके द्वारा किये गये कार्य उनकी पर्यावरणीय चेतना को भी प्रमाणित करते हैं। प्राचीन भारत में वनों को बचाने तथा वनों में वृद्धि के लिए अनेक प्रयास किये जाते थे। चूँकि प्राचीनकाल का जीवन पूर्ण रूप से प्रकृति पर निर्भर था अतः तात्कालिक लोग प्रकृति के महत्व को समझते थे। वे सभी भी बेवजह प्रकृति को नुकसान नहीं पहुँचाते थे। यहाँ तक कि ईंधन के लिए पेड़ों को नुकसान नहीं पहुँचाया जाता था। महिलाएं ईंधन के लिए पेड़ों से टूटी हुई या सूखे पेड़ से ही लकड़ियां लेती थी। चारे के लिए भी सभी पेड़ों को नुकसान नहीं पहुँचाया जाता था। चारे के लिए वनों से भूमि पर उगी हुई घास ही लाती थीं तथा चारे हेतु कुछ विशेष पेड़ों की ही पत्तियां काटी जाती थी, पूरे पेड़ को नहीं काटा जाता था। जब कभी कोई हरा पेड़ काटा जाता था तो उसके स्थान पर नये पेड़ भी लगाये

जाते थे। 'चिपको' तथा 'एपिको' आन्दोलन आदि वनों के प्रति लोगों के प्रेम को दर्शाते हैं। इसके अतिरिक्त भी पर्यावरण को बचाने तथा नुकसान न पहुँचाने के भी प्रयास किये जाते थे।[13]

विदित हो कि पर्यावरण को सर्वाधिक नुकसान कूड़े कचरे से होता है लेकिन प्राचीनयुग में महिलाएं कूड़े–कचरे का निस्तारण बड़ी समझदारी से करती थी। उनके द्वारा कभी भी कूड़े–कचरे को ऐसे ही नहीं फेंका जाता था। वे रसोई का गीला कूड़ा (पीण्डा/कलच्चणी) (सब्जी व फल के छिलके, बचा हुआ खाना आदि) एक बर्तन में एकत्र करती थी तथा गायों को लिखा दिया जाता था। इसके अतिरिक्त जो भी शेष गीला कूड़ा होता था जिसे गाय नहीं खाती थी उसे एक स्थान पर एकत्रित कर मिट्टी अथवा गोवर से दबा दिया जाता था। जबकि सूखे कूड़े को या तो जला दिया जाता था अथवा उसे भी गोबर के साथ डाल दिया जाता था। चूँकि उस युग में किसी प्रकार के पलास्टिक का इस्तेमाल नहीं होता था अतः अधिकांश कूड़ा खाद के रूप में बदल जाता था जिसे वर्तमान में जैविक खाद कहा जाता है। ईंधन की बची हुई राख को भी खेतों में खाद के रूप में तथा बर्तन धोने के लिए प्रयोग में लायी थी। इसके अतिरिक्त रसोई के पानी के निस्तारण हेतु भी विशेष व्यवस्था की गई थी। रसोई का पानी भी घर के निकट के खेतों में ही डाला जाता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि महिलाएं पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने का कोई कार्य नहीं करती थीं। इसीलिए प्राचीन काल में पर्यावरण सम्बन्धी बीमारियां नहीं होती थीं और इसका बड़ा श्रेय महिलाओं को ही जाता है।

निष्कर्ष– उपरोक्त विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि भारतीय महिलाओं ने प्रत्येक युग में अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है। यद्यपि यह बात अलग है कि पुरूष प्रधान समाज होने के कारण उनकी बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य भी उनको वो पहचान कभी न दिला सके जो उन्हें मिलनी चाहिए थी। आज हम कोई भी समाचार–पत्र, पत्रिका उठाकर देख ले उसमें 'दादी–नानी के नुस्खे' नामक एक लेख अवश्य दिखाई देता है और इसका प्रकाशन समाचार–पत्र, पत्रिकाओं में सम्भवतः तभी से हुआ है जब इनकी पहुँच जन सामान्य तक आसान हुई। लेकिन यहाँ वास्तविक मुददा यह है कि यह शीर्षक भी कहीं न कहीं हमारी प्राचीन भारतीय महिलाओं की वैज्ञानिक सोच को दर्शाता है। आज प्रत्येक समाचारपत्र, पत्रिका, न्यूज चैनल आदि आये दिन महिला सशक्तिकरण को लेकर तरह–तरह के लेख, वाद–विवाद व चर्चाओं का प्रकाशन करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त अनेकों सरकारी व गैर–सरकारी संगठन भी महिला सशक्तिकरण के उद्देश्यों को लेकर कार्यरत हैं और कई मायनों में तो ये अपने प्रयासों में सफल भी हुए हैं। इन्हीं प्रयासों के परिणाम स्वरूप आज समाज में महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। अब आये दिन हमें महिलाओं द्वारा नित नई ऊँचाइयों को छूने की खबर पढ़ने व सुनने को मिल जाती हैं। लेकिन इसी भारतीय समाज की एक विडम्बना यह भी है कि जिन प्राचीन महिलाओं ने वर्तमान में प्रयोग होने वाली नित नई तकनीकों व आविष्कारों की आधारशिला रखी उन्हें आज तक भी न तो कोई पहचान ही मिली और न ही उन्हें व उनके किसी आविष्कार को वैज्ञानिकता का नाम दिया गया। यदि इस विषय में गम्भीरता से विचार किया जाय तो अभी भी देर नहीं हुई है, कुछ प्रयासों से उन्हें भी एक नई पहचान दिलाई जा सकती है और हम गर्व से कह सकते हैं कि अशिक्षित होने के बावजूद हमारी प्राचीन भारतीय विदुषी महिलाएं भी उच्च वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखती थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भारत की संस्कृति तथा कला, के0सी0 श्रीवास्तव, प्रकाशक यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद।
2. प्राचीन भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और भौगोलिक अध्ययन, डा0 कैलाश चन्द जैन, श्री पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
3. नारीवाद, वी0एन0 सिंह और जनमेजय सिंह, रावत पब्लिकेशन्स।
4. भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास, आर, शरण, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली–110002.
5. भारतीय इतिहास में महिलाएं, खुराना एवं चौहान, लक्ष्मी नारायण अगवाल, आगरा।
6. कौटिल्य का अर्थशास्त्र, अनु0 प्राणनाथ विद्यालंकार, 1923 प्र0 मोतीलाल बनारसीदास, सैद मिट्ठा बाजार, लाहौर।
7. श्री नेत्र, पाण्डे राजपूतों का प्रारम्भिक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
8. भगवती प्रसाद पांथरी, सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य, प्रकाशन गृह, काशी विद्यापीठ, बनारस, 1956.
9. वृन्दा करात, जीना है तो लड़ना होगा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008.
10. उमा चक्रवर्ती, नारीवादी राजनीति (सं0 साधना आर्य आदि) हिन्दी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2001.
11. डा0 वी0एन0 सिंह, आधुनिकता एवं नारी सशक्तिकरण, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, नई दिल्ली, 2010.
12. रूपायन, अमर उजाला, मार्च 2011.
13. दैनिक जागरण, 13 अक्टूबर 2010.